International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 29-10-2021, Accepted: 10-11-2021, Published: 30-11-2021
Volume 7; Issue 6; 2021; Page No. 38-43

स्त्री सशक्तिकरण के मायने

डॉ. घनश्याम दास
सहायक प्राध्यापक-अतिथि (हिन्दी), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
स्त्री प्राचीन काल से शोषित और पीड़ित रही है। उसके अधिकारों पर पितृसत्ता ने कुठाराघात किया और उसे अधोगति के लिए विवश किया। पितृसत्ता ने स्त्री की मानसिकता को कुंद किया और उसके विकास के मार्ग को अवरुद्ध करने का कार्य किया।
आधुनिक युग आते-आते स्त्री की स्थिति में परिवर्तन हुआ और धीरे-धीरे पितृसत्ता के षड्यंत्र को स्त्री ने पहचाना और उसके खिलाफ आवाज बुलंद की। आज जबकि हम उत्तर आधुनिक दौर में हैं जहां पुराने मूल्य और परंपराएं ध्वस्त हो रही हैं और विमर्शों के एक नए युग का आगाज हो रहा है, ऐसे में स्त्री भी अपनी अस्मिता के लिए उठ खड़ी हुई है और पूरी ताकत के साथ चुनौतियों का सामना कर रही है। वह अपने सशक्तिकरण के मार्ग की ओर लगातार प्रयासरत है। वह आज अर्थोपार्जन भी कर रही है और साथ-साथ सामाजिक तथा राजनीतिक भागीदारी में भी हिस्सेदारी दिखा रही है। उसकी सामाजिक हैसियत में भी सकारात्मक बदलाव आ रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में भी वह पुरुष से किसी मायने में कम नहीं दिखती। वह शिक्षा ग्रहण भी कर रही है और समाज को शिक्षित भी कर रही है।

मूल शब्द: स्त्री सशक्तिकरण, पितृसत्ता, स्त्री शोषण, स्वाभिमान, स्त्री स्वावलंबन, आत्मनिर्भरता, समाज, अर्थोपार्ज

प्रस्तावना

स्त्री किसी भी समाज की नींव होती है। वह समाज रूपी ढांचे के लिए एक पिलर के रूप में कार्य करती है। किसी भी स्वस्थ समाज के लिए स्त्री की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान होता है। स्त्री चूँकि परिवार की धुरी होती है अतः सारा परिवार स्त्री के इर्द-गिर्द ही अपना निर्माण करता है। बिना स्त्री के किसी भी स्वस्थ और सभ्य परिवार की कल्पना नहीं कि जा सकती।

सिर्फ परिवार ही नहीं स्वस्थ समाज के निर्माण में भी स्त्री की भूमिका अहम होती है। परिवार, समाज और राष्ट्र एक कड़ी के रूप में कार्य करते हैं अतः यह निश्चित है कि यदि परिवार स्वस्थ और मजबूत नहीं होगा तो समाज भी सही नहीं हो सकता और ऐसे में राष्ट्र भी कमजोर होता जाएगा। ऐसे में स्त्री की अहमियत अपने आप सिद्ध हो जाती है।

समाज प्रगतिशील और मजबूत बने इसके लिए यह जरूरी है कि स्त्री भी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चले। स्त्री शक्ति का रूप कही जाती है। इसीलिए उसे देवी और शक्ति कहकर संबोधित किया जाता है। लेकिन यह खेद जनक है कि स्त्री के देवी रूप को पूजा जाता है, उसके आगे नतमस्तक पुरुष परिवार और समाज मे स्त्री का शोषण करता है, उसे प्रताड़ित करता है और उसकी अस्मिता को पैरों तले रौंदता है। पुरुष के इस कृत्य से न सिर्फ स्त्री का विकास अवरुद्ध होता है बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के समुचित विकास में

भी बाधा उत्पन्न होती है। यदि स्त्री मजबूत और सशक्त होगी तो इसके सकारात्मक परिणाम परिवार और समाज के स्तर पर भी देखने को मिलेंगे। अतः पुरुष को अपनी मानसिकता में सकारात्मक बदलाव लाने की अत्यंत आवश्यकता है। स्त्री के सशक्तिकरण में समाज और राष्ट्र का भी सशक्तिकरण छिपा होता है।

स्त्री सशक्तिकरण का अर्थ और प्रयोजन

जब हम स्त्री सशक्तिकरण की बात करते हैं तो हमारे जहन में ऐसी स्त्री की छवि उभरती है जो मजबूत इरादों वाली हो, जो निर्णय लेने में सक्षम हो, स्वावलंबी हो। समाज और राष्ट्र के विकास में भागीदार हो। स्त्री सशक्तिकरण के बिना स्त्री का सर्वांगीण विकास संभव नहीं है। उसका शारीरिक मानसिक और सामाजिक विकास सशक्तिकरण की प्रक्रिया के माध्यम से ही हो सकता है। हम जानते हैं इतिहास में स्त्री की स्थिति बहुत अच्छी नहीं रही है। वह पितृसत्ता की शिकार रही है। उसने दमन और शोषण को झेला है,वह गुलामी की चक्की में लगातार पिसती चली आई है।

स्त्री सशक्तिकरण के माध्यम से ही स्त्री का विकास संभव है। मानसिक रूप से स्त्री का सशक्त होना बहुत जरूरी है क्योंकि यदि मानसिक रूप से स्त्री मजबूत नहीं होगी तो वह कमजोर और असहाय बनी रहेगी। ऐसी स्थिति में परिवार,समाज और राष्ट्र आदि के विकास में वह भागीदार नहीं हो सकती है। स्त्री सशक्तिकरण इस अर्थ में बड़ा ही महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यदि स्त्री का सशक्तिकरण नहीं होगा तो समाज और राष्ट्र का भी सशक्तिकरण नहीं हो सकता।

स्त्री सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि वह है मानसिक रूप से तो सबल हो ही साथ ही आर्थिक स्तर पर भी उसकी स्थिति अच्छी हो। सामाजिक स्तर पर भी वह मजबूत हो तथा राजनीतिक क्षेत्र में भी उसकी महत्वपूर्ण हिस्सेदारी हो।

आर्थिक सशक्तिकरण

आर्थिक स्तर पर यदि स्त्री मजबूत होगी तो निश्चित रूप से स्त्री आत्मनिर्भर बनेगी और उसके अंदर आत्मविश्वास का संचार होगा। आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास दोनों व्यक्तित्व के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण होते हैं। जहां तक आत्मनिर्भरता की बात है तो इससे व्यक्तित्व मजबूत और प्रभावशाली बनता है और सामाजिक विकास में सकारात्मक भूमिका के काम आता है। यदि स्त्री आर्थिक स्तर पर स्वावलंबी होगी, वह अपने पैरों पर खड़ी होगी तो इससे अनेक लाभ होंगे। मसलन इससे परिवार मजबूत होगा, परिवार के मजबूत होने से स्वस्थ समाज का निर्माण होगा। समाज के मजबूत होने से राष्ट्र मजबूत होता है यानी एक स्त्री के मजबूत होने से न सिर्फ परिवार मजबूत होता है बल्कि उसी के समानांतर समाज और राष्ट्र का भी विकास होता है। यानी स्त्री यदि स्वावलंबी है, अपने पैरों पर खड़ी है तो वह अपने मजबूत कंधों पर समाज और राष्ट्र का भार उठाने में सक्षम होगी।

आर्थिक पक्ष के दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण है। यदि वह कमाती है तो उसकी स्थिति बेहतर बनती है, वह सामाजिक और शारीरिक स्तर पर मजबूत बनेगी। दिमागी स्तर पर भी उसका विकास होगा। जो स्त्री आर्थिक स्तर पर मजबूत होती है वह परिवार को चलाने में एक पुरुष का सहयोग करती है या सहयोगी होती है। आर्थिक सशक्तिकरण से स्त्री न केवल आत्मनिर्भर बन पाएगी बल्कि वह समाज के विकास में भी सहयोग कर सकेगी। आर्थिक स्वावलंबन से स्त्री के अंदर स्वाभिमान की भावना पैदा होगी जो उसके मानसिक विकास के लिए अति आवश्यक है। स्वाभिमान ही वह वस्तु है जो मनुष्य को मनुष्य होने का एहसास कराती है। आर्थिक स्वावलंबन से स्त्री अपने पैरों पर खड़ी होगी तो उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी वृद्धि होगी, उसका सामाजिक सम्मान बढ़ेगा, वह पुरुष की दया पर निर्भर नहीं रहेगी। अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे पुरुष पर निर्भर नहीं रहना होगा। इसका एक महत्वपूर्ण लाभ यह भी होगा की स्त्री को पुरुष की प्रताड़ना से छुटकारा मिलेगा और वह पुरुष की ज्यादतियां सहन करने को बाध्य नहीं होगी।

निर्णय लेने का अधिकार

पितृसत्ता स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित करती है। पितृसत्ता में पुरुष ही सर्वोपरि होता है, परिवार का मुखिया वही है। सभी तरह के फैसले पुरुष ही लेने का अधिकारी होता है। यानी हम इसे इस रूप में देख सकते हैं की स्त्रियां पुरुषों के फैसलों के अधीन जीवन यापन करती चली आई हैं। किसी भी तरह का फैसला लेने का स्त्री को कोई अधिकार नहीं होता। सारे निर्णय पुरुष द्वारा ही लिए जाते हैं।

डॉ अनामिका सीता का दृस्तान्त देते हुए बड़ी सटीक बात लिखती हैं-

"फिर सीता को मूक आज्ञाकारिता के कठघरे में जकड़नेवाले यह क्यों भूल जाते हैं कि सीता का सबसे बड़ा सच है लक्ष्मण-रेखा लाँघ जाना यानी आपात स्थिति में अपने विवेक के हिसाब से नियमावलियों में परिवर्तन का साहस! निर्णय गलत भी हो जाएं तो क्या, निर्णय लिए गए, यही बड़ी बात है। दस में एक निर्णय किसका गलत नहीं होता? अपने हिसाब से सीता ने ठीक ही निर्णय लिया। किसी को भिक्षा दी, भूखे को भोजन दिया...और इस तथाकथित गलत निर्णय का तेज ही था जो बाद में रावण के वध का निमित्त बना। न होता इस निर्णय का तेज तो रावण का वध कैसे होता? सीता कठपुतली होती तो रावण कैसे मारा जाता? जीवन में दो-चार निर्णय गलत भी होते हों तो हो जाएं- अकसर वे किसी बड़े प्रयोजन का द्वार सिद्ध होते हैं।"[1]

निश्चित रूप से हमें सीता के इस निर्णय की सराहना करनी चाहिए क्योंकि उन्होंने निर्णय लेने का साहस उन परिस्थितियों में दिखाया जहां स्त्रियां इस अधिकार से वंचित थीं। बल्कि यदि वह अपने पति राम के साथ वनवास को निकलीं तो यह भी उन्हीं का निर्णय था और इसी निर्णय का परिणाम था कि एक स्त्री ने घर की चौखट को लांघ कर दुनिया देखी, समझी और अपने पति राम के दुःखों में भागीदार बनीं। डॉ.अनामिका लिखती हैं-

"सीता अपने समय की पहली महिला थी जिसने पति के साथ ही सही, घर की चौखट लांघ कर अपनी आंखों से दुनिया देखी!"[2]

यदि सीता ने राम के साथ वन जाने का निर्णय न लिया होता तो रावण का वध ना हो पाता। अर्थात रावण के वध के मूल में सीता का निर्णय बड़ा महत्वपूर्ण है। स्त्रियां परिवार के हिट में भी अच्छे और अहम निर्णय लेने में सक्षम होती हैं लेकिन पितृसत्ता उन्हें उनके इस अधिकार से वंचित कर देती है।

स्त्री सशक्तिकरण के मार्ग में बाधक तत्व

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है। एक ऐसा समाज जिस पर प्रभुत्व एक पुरुष का होता है। पुरुष ही समाज को नियंत्रित करता है और उसे संचालित करता है। उसी के नियम और कानून समाज में लागू होते हैं जिसे स्त्री को मानना होता है। जब हम परिवार की संकल्पना करते हैं तो परिवार का मुखिया भी पुरुष होता है, वही परिवार का नियंता होता है और उसी के निर्देशानुसार परिवार की सारी व्यवस्था संचालित होती है। स्त्री पुरुष के अधीन रहने को विवश की जाती रही, उसके समस्त कार्य पुरुष के आदेशानुसार संचालित होते हैं। पितृसत्तात्मक परंपरा वस्तुतः स्त्री को पवित्र, आज्ञाकारी और शांत होने को बाध्य करती है या वह इससे अपेक्षा करती है कि वह पवित्र रहे, शांत रहे और पुरुष के आगे स्वयं को कमतर समझे। लेकिन दुर्भाग्य का विषय है कि पुरुष अपने लिए ऐसी स्थिति के लिए तैयार नहीं होता। वह किसी भी तरह के आज्ञाकारी कटघरे में खड़ा नहीं रहना चाहता है|

पितृसत्ता कदम-कदम पर स्त्री की अस्मिता को नकारती आई है । पुरुष स्त्री के अधिकारों और उसकी अस्मिता की अवहेलना करता रहा है। स्त्री से अपनी सेवा कराने में पति अपना अधिकार समझता है लेकिन स्त्री की सेवा करने में उसे निश्चित रूप से हिचक होती है। सामाजिक रूप में तो एक पुरुष स्त्री की सेवा करने की सोच ही नहीं सकता। वैवाहिक संबंध के अंतर्गत स्त्री और पुरुष दोनों ही बराबर होते हैं और दोनों के ही कुछ कर्तव्य और कुछ अधिकार होते हैं, लेकिन पुरुष इस वैवाहिक संस्था में भी सर्वोपरि हो जाता है और वह पत्नी से अपनी सेवा और चाकरी कराता है। लेकिन

बदले में वह पत्नी को ना तो अपना सेवा-दान देता है और ना ही उसके अधिकारों की अधिक परवाह करता है। डॉ.अनामिका इस संदर्भ में बड़ा सटीक वक्तव्य देती हैं। वह कहती हैं-

"पैर दबाने या सेवा कर देने में कोई हर्ज नहीं, मगर तब तक जब तक सेवा पारस्परिक हो! कभी जब पत्नी बीमार हो तो उसके भी दबा दिए जाएं हाथ-पैर! प्रेम का कोई व्याकरण नहीं होता किंतु प्रशासन का होता है! और ज्यादातर स्त्रियों को अपने पतियों से और दलित आदिवासी कामगरों को अपने अधिपतियों से यही तो मूल शिकायत है कि वे ज्यादा प्यार नहीं करते, उनकी सारी कारयित्री ऊर्जा पत्नी और अन्य मातहतों के नियंत्रण में ही खर्च हो जाती है! वे न प्यार देते हैं न पगार! दिनभर की खटनी का हासिल क्या? डांट-मार-फटकार-गाली-गलौज, यौन शोषण और गहरी उपेक्षा।"[3]

दरअसल स्त्री और यदि इसे भारतीय संदर्भ में देखें तो भारतीय स्त्री की यही त्रासदी है कि वह पितृसत्ता के बंधनों से मुक्त नहीं हो पाती और लगातार शोषण की चक्की में पिसती है। पति के लिए करवा चौथ का व्रत भी रखती है,श्रृंगार भी करती है और साथ ही पति द्वारा शासित भी होती है और उसके हाथों पिटती भी है। स्त्री को यह सब अस्वाभाविक नहीं लगता क्योंकि स्त्री यह मानकर चलती है कि उसकी नियति ही यही है क्योंकि परंपरा ने स्त्री को यही सिखाया है। वह पीढ़ी दर पीढ़ी इस शोषण का शिकार होती चली आई है और कमोबेश आज भी हो रही है। जब तक स्त्री पितृसत्ता के चंगुल से आजाद नहीं होगी तब तक उसका सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा।

सामाजिक रूढ़ियाँ भी स्त्री सशक्तिकरण के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा हैं। सामाजिक रूढ़ियां ना केवल स्त्री के विकास का रास्ता रोकती हैं बल्कि समाज और राष्ट्र की उन्नति में भी बाधा उत्पन्न करती हैं। प्राचीन काल से अनेक सामाजिक रूढ़ियां व्यक्ति के साथ चिपकते हुए आज भी चल रही हैं, जबकि आज हम उत्तर आधुनिक होने का दावा करते हैं। व्यक्ति इन से मुक्त नहीं हो पाता। स्त्रियां सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं में ऐसी जकड़ी हुई हैं कि वह उन से बाहर नहीं निकल पातीं। डॉ कुसुम मेघवाल इस संदर्भ में अपना वक्तव्य देती हैं और लिखती हैं-

"आश्चर्य की बात तो यह है कि इस स्वतंत्र भारत में भी इस अन्याय परक समाज व्यवस्था का प्रचार किया जा रहा है। आज घर-घर में टीवी आ गया है। रामायण, महाभारत तथा अन्य धार्मिक षड्यंत्रों यथा मांग भरना, पूजा करना, करवा चौथ का व्रत करना, यौन शुचिता सिद्ध करना आदि कितनी ही दासताओं का शिक्षण, प्रशिक्षण व्यापक स्तर पर चालू है।"[4]

स्त्री जब तक ऐसी रूढ़ियों और परंपराओं से बाहर नहीं निकलेगी जो उसके विकास में बाधक हैं, तब तक वह स्वयं का विकास नहीं कर सकती और न ही उसके सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

समाज में लिंग भेद की समस्या भी स्त्री के समुचित विकास में बाधा उत्पन्न करती है। उसके सशक्तिकरण के मार्ग में लिंग भेद एक बड़ी समस्या के रूप में उपस्थित होता है। जब तक स्त्रियों के प्रति लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाएगा तब तक समाज में स्त्री का विकास संभव नहीं है। लैंगिक भेदभाव दरअसल किसी भी समाज की बहुत बड़ी समस्या होती है। इसके दुष्परिणाम व्यापक रूप में समाज को झेलने पड़ते हैं। लैंगिक भेदभाव के चलते समाज में असमानता बढ़ती है और इस असमानता के बढ़ने से देश सामाजिक,सांस्कृतिक आर्थिक और शैक्षिक रूप से असमानता का शिकार होता चला जाता है। इससे देश की प्रगति और उन्नति में बाधा उत्पन्न होती है। स्त्री लगातार सामाजिक और मानसिक रूप से पिछड़ती चली जाती है। उसका लगातार शोषण होता है और समाज जड़ता की ओर अग्रसर होता चला जाता है।

हम जानते हैं कि व्यक्ति की पहली पाठशाला उसका परिवार होता है। परिवार ही वह इकाई है जो व्यक्ति को सबसे पहला सबक सिखाती है। अतः पारिवारिक स्तर पर यह बहुत जरूरी है की स्त्रियों के प्रति एक सकारात्मक और जिम्मेदाराना रवैये का निर्वाह किया जाए। बेटे और बेटी में फर्क परिवार से ही आरंभ होता है

अतः इस फर्क को पारिवारिक स्तर पर ही खत्म करने के प्रयास होने चाहिए। किसी भी दंपति को बेटा और बेटी में फर्क नहीं करना चाहिए। यदि यह फर्क लगातार चलता है तो उससे परिवार का तो विकास रुकता ही है साथ ही समाज और राष्ट्र का भी विकास रुकता है। पारिवारिक स्तर पर लैंगिक भेदभाव को समाप्त किए जाने की अत्यंत आवश्यकता है। इसी लैंगिक भेदभाव के चलते कन्या भ्रूण हत्या जैसी गंभीर बीमारियां समाज को झेलनी पड़ती हैं। इसी भेदभाव के चलते स्त्रियां शैक्षिक रूप से पिछड़ जाती हैं। शैक्षिक रूप से पिछड़ना स्त्री के लिए किसी भी रूप में हितकर नहीं हो सकता। लिंग भेद के माध्यम से सामाजिक स्तर पर स्त्रियों का खूब शोषण होता है। इसी के माध्यम से स्त्री के वर्चस्व को नकारा जाता है, स्त्री की अग्नि परीक्षाएं होती हैं, उन्हें विभिन्न गालियों से नवाजा जाता है और अपशब्द कहे जाते हैं। लिंग भेद के एक केंद्र में एक बड़ी महत्वपूर्ण धारणा होती है- यौन शुचिता।

जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं-

"लिंगभेद वादी पुरुष विमर्श पर गौर करें तो पाएंगे कि वहां स्त्री अस्मिता को खत्म करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण रणनीतिक कदम उठाए गए हैं उनमें सबसे बड़ा है नारी धर्म नारी धर्म के बहाने पतिव्रत धर्म के महत्व पर जोर दिया गया योनि की शुचिता को सर्वोपरि दर्जा दिया गया।"[5]

स्त्री सशक्तिकरण में सामाजिक दायित्व की भूमिका

सदियों से स्त्री पितृसत्ता की शिकार होती आई है। समाज में लगातार उसका शोषण होता रहा है। अतीत में झांक कर देखें तो पुरुष ने स्त्री को उसके अधिकारों से लगातार वंचित रखा है। उसका शोषण किया है, दमन किया है और उसे दबाया है। आज जबकि हम आधुनिक युग में प्रवेश कर चुके हैं और उससे भी बढ़कर उत्तर आधुनिक दौर में पहुंच चुके हैं, तब समाज की जिम्मेदारी स्त्री के प्रति महत्वपूर्ण बन जाती है। महत्वपूर्ण इस अर्थ में कि सदियों से जो अत्याचार और अन्याय स्त्री सहती आई है उसके बदले पुरुष कम से कम स्त्री को उसके वाजिब अधिकार दे और उसके विकास के मार्ग को प्रशस्त करने में उसका सहयोग करे।

महिलाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण आज समाज की जरूरत है। स्त्री के बिना पुरुष का कोई वजूद नहीं, ऐसे में पुरुष समाज को स्त्री के प्रति सहयोग का भाव रखते हुए उसकी स्थिति को सामाजिक रूप से सुदृढ़ करने में प्रोत्साहन देने की नितांत आवश्यकता है। महिलाएं ही वह कारण होती हैं जिनकी वजह से पुरुष का वजूद होता है।

लैंगिक भेदभाव को दूर करना समस्त पुरुष समाज की जिम्मेदारी होनी चाहिए। लिंग के आधार पर भेदभाव को सिरे से खारिज करते हुए समाज को सही और सकारात्मक सोच देने की अत्यंत आवश्यकता है। बेटा हो या बेटी दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। आधुनिक समय की तो यह जरूरत भी है। यदि समाज का सही और संतुलित विकास करना है तो यह आवश्यक है कि लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का अंतर समाप्त हो। अनेक सर्वों में यह तथ्य सामने आया है कि पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों का रेशियो कम है। यह किसी भी सभ्य समाज के लिए चिंता की बात होनी चाहिए।

सामाजिक भूमिकाओं में स्त्री की भागीदारी सुनिश्चित करना भी समाज और शासन-प्रशासन की जिम्मेदारी है। सामाजिक भूमिकाओं में स्त्री की भागीदारी जितनी अधिक होगी उतना ही समाज और देश का विकास होगा। स्त्रियाँ आज किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से न तो कमतर हैं और न ही पीछे हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि कोई भी क्षेत्र हो स्त्रियाँ हर क्षेत्र में सराहनीय योगदान दे रही हैं। यह सरकार की विशेष जिम्मेदारी होनी चाहिए कि स्त्रियों के लिए उचित अवसर उपलब्ध कराए और उसके विकास में सहयोग प्रदान करे। महिलाओं को उचित अवसर और प्रतिनिधित्व देना सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए। स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की भी अत्यंत आवश्यकता है। यदि स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होंगी तो

उनका समुचित विकास सम्भव नहीं हो सकेगा और वह सामाजिक और मानसिक स्तर में पिछड़ जाएंगी। इसका नुकसान न केवल स्त्रीयों को होगा बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र को भी इसका दुष्परिणाम भुगतान होगा। प्रभा खेतान इस संदर्भ में लिखती हैं-

"पितृसत्तात्मक परंपरा ने निश्चित कर रखा है कि अधिक से अधिक शिक्षा पुरुष को मिलनी चाहिए क्योंकि उसे कमाना है। उसे पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए क्योंकि उसके श्रम की कीमत है।"[6]

पुरुष क्योंकि कमाता है अतः उसे शिक्षा भी अधिक मिलनी चाहिए और पौष्टिक भोजन भी मिलना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि जो श्रम करता है उसे पौष्टिक आहार की आवश्यकता होगी। इस वक्तव्य के माध्यम से प्रभा खेतान मानसिकता की पड़ताल करती हैं जिसमें स्त्रियों को बहुत पीछे रखा जाता है, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो अथवा श्रम का क्षेत्र हो। अतः स्त्रियों के लिए भी शिक्षा उतनी ही जरूरी है जितनई कि पुरुष के लिए। तभी स्त्रियां श्रम के क्षेत्र में आगे आ पाएंगी और पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकेंगी।

स्त्री चूँकि समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है अतः उसे दरकिनार कर कोई भी समाज तरक्की नहीं कर सकता। अतः स्त्री जाति को सशक्त बनाने में समाज और राष्ट्र को ईमानदारी से सहयोग करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

आज स्त्री अस्मिता का दौर है। कोई भी समाज और राष्ट्र स्त्री को नजरअंदाज कर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आगे नहीं बढ़ सकता। स्त्री को सशक्त किये बिना कोई भी समाज उन्नति नहीं कर सकता। स्त्री की उन्नति में ही समाज और राष्ट्र की उन्नति छिपी होती है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में समस्त विश्व एक छत के नीचे सिमट सा गया है। परस्पर स्पर्धा में सारा विश्व त्वरित गति से आगे बढ़ने को उत्सुक है। कोई भी देश तभी आगे बढ़ता है जब उसकी आंतरिक स्थिति में संतुलन हो और एकता की भावना हो। स्त्री को नजरअंदाज कर कोई भी देश आज आगे नहीं बढ़ सकता।

वर्तमान दौर में सूचनाओं का विशेष महत्व हो गया है। सूचनाएं भी त्वरित गति से मिलना अति आवश्यक है। सूचनाओं के इस युग मे स्त्री भी इस सूचना तंत्र का अहम हिस्सा बनकर सामने आई है। सूचनाओं के इस पूरे सिस्टम में स्त्री की अवहेलना सम्भव नहीं दिखती। स्त्री इस सूचना विस्फोट के युग मे अपना महत्वपूर्ण रोल अदा कर रही है।

परिवार का सर्वांगीण विकास बिना स्त्री के नहीं हो सकता।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. अनामिका, त्रिया चरित्रम:उत्तर कांड, आधार प्रकाशन, पंचकूला, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ-165-166
2. डॉ.अनामिका, त्रिया चरित्रम:उत्तर कांड, आधार प्रकाशन, पंचकूला, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ-164
3. डॉ.अनामिका, त्रिया चरित्रम:उत्तर कांड, आधार प्रकाशन, पंचकूला, प्रथम संस्करण-2012, पृष्ठ-16
4. डॉ. कुसुम मेघवाल, नागपाश में स्त्री, सम्पादक-गीताश्री, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2010, पृष्ठ-166
5. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करण-2011,पृष्ठ-197
6. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2003,तीसरी आवृत्ति-2010, पृष्ठ-14-15